



# International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2015; 1(2): 12-13

© 2015 IJSR

www.sanskritjournal.com

Received: 11-01-2015

Accepted: 08-02-2015

Ganesh Pawar

Associate Professor,

Department Of Hindi,

Central University of

Karnataka,

GULBARGA, Karnataka

## "गीतिकाव्य धारा में : विद्यापति"

**Ganesh Pawar**

प्राचीन साहित्य के 'वीरगाथा-काल' में सामान्यतः दो प्रवृत्तियों का प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है, जिनमें से पहली प्रवृत्ति के अंतर्गत वे प्रबंधकाव्य आते हैं, जिनमें कवित्त-छप्पय आदि छंदों के भीतर तत्कालीन वीरों का योगदान गाया गया है। दूसरी प्रवृत्ति के अंतर्गत वे गीति-काव्य आते हैं, जिनमें वीरता एवं श्रृंगार संबंधी भावनाओं को सरस संगीत का रूप प्रदान किया गया है। इनमें से नरपति नालह कृत बीसलदेव रासो तथा जगनिक कृत 'आल्हखण्ड' वीरगीतात्मक कृतियाँ हैं और विद्यापति कृत पदावली में श्रृंगारात्मक भावनाओं के आधार पर मधुर गीतों की सृष्टि हुई है। इन सब गीतों में से विद्यापति के गीत अधिक मधुर, सरस एवं मर्मस्पर्शी हैं। इनमें श्रृंगारिक चेष्टाओं का हृदय ग्राह्य रूप प्रस्तुत किया गया है और ये गीत माधुर्य एवं सौंदर्य से ओतप्रोत हैं इन गीतों की समता तत्कालीन कोई भी गीतकार नहीं कर पाता। विद्यापति हिन्दी के प्रथम श्रेष्ठ गीतकार हैं और 'गीति.काव्य' के प्रतिनिधि कवि हैं।

जबकि साहित्य.रचना के क्षेत्र में संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश का बोलबाला था विचारों लोकभाषाएँ ग्रामीण जनता तक ही सीमित रही थीं। उस समय वही कवि समाज में आहत होता था, जो संस्कृत, प्राकृत या अपभ्रंश में रचना करता था क्योंकि लोकभाषा का कवि विद्यत्समाज में प्रतिष्ठा का अधिकारी नहीं होता था। यही कारण है कि अधिकांश कवि लोक भाषा को छोड़कर संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश में ही लिखा करते थे। कविवर विद्यापति ने भी इसी कारण अपनी कितनी रचनाएँ संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश में ही लिखी हैं। विद्यापति की संस्कृत रचनाओं में से 'शैवसर्वस्वसार' 'भू.परिक्रमा' पुरुष-परीक्षा 'गंगा-वाक्यावली' 'दान-वाक्यावली' 'वर्षकृत्य' 'दुर्गा-भक्ति-तरंगिणी' आदि कई ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। ऐसे ही उनकी अपभ्रंश रचनाओं में से 'कीर्तिकला' एवं 'कीर्ति-पताका' प्रसिद्ध हैं। परन्तु हिन्दी में विद्यापति की प्रसिद्धि का कारण उनकी पदावली है जिसमें वाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक के भिन्न.भिन्न अवसरों पर लोक.भाषा में लिखे गये उनके पदों एवं गीतों का संकलन किया गया है। ये गीत वास्तव में तत्कालीन हिन्दी भाषा के श्रृंगार हैं हिन्दी की गीति. काव्य परम्परा के प्रवर्तक हैं और इस बात के द्योतक हैं कि किस प्रकार हिन्दी लोक भाषा के रूप में उस समय निर्मित हो रही थी। तथा कैसे उसने धीरे.धीरे लोक भाषा के क्षेत्र से निकल कर साहित्यिक भाषा के क्षेत्र पर अपना अधिकार स्थापित करने का प्रयास किया था।

विद्यापति ने हिन्दी में जिस गीतिकाव्य-धाराको प्रवाहित किया है वह भारत की एक सुदीर्घ गीति. परम्परा से सम्बन्ध रखती है। गीति.काव्य की यह परम्परा वैदिक युग से ही विकसित हुई है। वैदिक युग का सामवेद इस गीति.काव्य का मूल स्रोत है जिसमें गेयता, मधुरता, धारावाहिकता आदि संगीत के सभी गुण विद्यमान हैं। सामवेद की संगीतमयी ऋचाओं के उपरान्त बौद्धों की थेरी-गाथाओं में गीति-काव्य की झोंकी मिल जाती है, परन्तु उसके उपरान्त जिस लौकिक संस्कृत के काव्य का विकास मिलता है उसमें यह गीतिकाव्य धारा अत्यधिक विकसित दिखाई देती है। कालीदास के ऋतु. संहार और मेघदूत में इसका पूर्ण विकास दिखाई देता है। परन्तु संस्कृत-काव्य की यह संगीतमयी गीति-धारा 'गाथासप्तशती', 'आर्या-सप्तशती', 'अमरुक-शतक', 'चौर पंचाशिका', धोयी कृत 'पवनदूत' आदि में प्रवाहित होती हुई बारहवीं शताब्दी में जयदेव के 'गीत-गोविन्द' के रूप में मधुर. राग रागनियों के स्वर में प्रवहमान होती हुई परिलक्षित होती है। सच पूछा जाय तो संस्कृत के गीति. काव्य का चरमोत्कर्ष एवं पर्यवसान 'गीत-गोविन्द' में ही दृष्टिगोचर होता है। इसका प्रत्येक पद मधुर राग की स्वर.लहरी से आप्लवित है।

**Correspondence**

Ganesh Pawar

Associate Professor,

Department Of Hindi,

Central University of

Karnataka,

GULBARGA, Karnataka

इसकी कोमलकान्त पदावली इसके सरस एवं सरल पद-विन्यास तथा इसकी मधुर एवं मनमोहक भाव-व्यंजना ने ही हिन्दी के गीति-काव्य को प्रेरणा प्रदान की।

यद्यपि हिन्दी के वीरगाथा-काल में वीर-गीतों अथवा वीर-गाथाओं का ही प्राधान्य था और तत्कालीन चारण कवि स्थान-स्थान पर घूम-घूमकर एवं मस्ती में झूम-झूमकर आल्हा-ऊदल जैसे वीरों के गीत गाया करते थे तथापि विद्यापति ने गीति-काव्य की प्राचीन परम्परा को स्थायित्व प्रदान करने के लिए 'गीत-गोविन्द' के ही आधार पर हिन्दी की तत्कालीन लोकभाषा मैथिली में अपने ऐसे मधुर गीतों की रचना की जिसमें वीर-गाथा सम्बन्धी गीतों का ढाँचा बदलकर जयदेव की गीत-लहरी के स्वरों से सुसज्जित किया गया तथा जिनमें लौकिक प्रेम के साथ-साथ रागात्मक आवेश की अभिव्यंजना को महत्व दिया गया। विद्यापति के ये गीत प्रेम की मादकता, श्रृंगारिकता, ऐहिकता, विलासिता एवं भावों की स्वतन्त्रता के परिचायक हैं। इनमें मिथिला के दाम्पत्य-प्रेमपूर्ण नर-नारियों का मधुर कण्ठ गूँजता हुआ सुनाई पड़ता है। विद्यापति की ये गीतियाँ इतनी लोक-प्रचलित एवं लोक प्रिय हुई कि गाँव-गाँव एवं नगर-नगर में नर-नारी अवकाश के क्षणों में इन्हें गाया करते थे और इनकी धूम बंगाल तक मची हुई थी। उसी समय विद्यापति के बहुत से पदों को तो बंगला का ऐसा रूप दे दिया गया कि उनका मैथिली रूप ही लुप्त हो गया और उन्हीं के आधार पर बहुत काल तक विद्यापति बंगला के ही कवि माने जाते रहे। परन्तु कालान्तर में बा.राजकृष्ण मुकर्जी तथा डॉ.प्रियर्सन की खोजों से ज्ञात हुआ कि ये बंगला के नहीं अपितु मिथिला के कवि हैं और मिथिला की प्रवृत्ति बंगाल की अपेक्षा हिन्दी के कहीं अधिक निकट है। जो कुछ भी हो विद्यापति के गीत उस समय इतने सफल एवं प्रभावोत्पादक रहे कि उनके प्रशंसकों ने कवि को 'अभिनव जयदेव', 'दशाविधान', 'कविशेखर', 'कविकण्ठहार', 'कविरंजन' आदि अनेक उपाधियों से विभूषित किया। विद्यापति की इस गीति-परम्परा की कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि भक्त कवियों ने भी अपनाया।

कबीर ने उसमें आध्यात्मिकता का पुट दिया तो सूर ने उसमें मधुरता, भावों की तरलता, अनुभूति की तीव्रता, वात्सल्य सरसता, वियोग की विदग्धता एवं पुनीत प्रेम की गहनता का समावेश किया और तुलसी ने उसे सेव्य सेवक भाव के साथ साथ प्रभू के महत्व एवं भक्त के दैन्य से ओत प्रोत कर दिया। परन्तु मीरा ने इस गीति काव्य की परम्परा को चरम सीमा तक पहुँचाया क्योंकि मीरा ने इस काव्य-धारा में नारी-सुलभ सुकुमारता, हृदय की कोमलता, वियोग विह्वलता तथा विरहिणी की धार्मिक अनुभूति को इतना अधिक भर दिया कि उसके उपरान्त आध्यात्मिक भावों से ओत प्रोत ऐसी गीतियाँ हिन्दी जगत् में दृष्टिगोचर नहीं होती। इसके अनन्तर भारतेन्दु युग में ही पुनः गीति काव्य धारा का प्रवाह दिखाई देता है और वह प्रभाव भी कुछ बदला हुआ है क्योंकि यहाँ आकर विद्यापति के लौकिक प्रेम तथा भक्तों की आध्यात्मिकता के स्थान पर देश प्रेम का स्वर अधिक मुखरित हो उठा है और उनमें सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति से उत्पन्न शोक करुण आदी की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है तदनन्तर द्विवेदी युग में आकर नये ढंग की गीति काव्य धारा का आरम्भ हो जाता है जिसे विद्वान् प्रगति कहना अधिक ठीक समझते हैं। गीति काव्य की यह धारा रूप एवं रचना में भी अपनी पूर्व परम्परा से सर्वथा भिन्न हो जाती है और वर्ण्य-विषय भी बदल जाता है छायावादी युग के आते ही प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी आदी के द्वारा इन नई प्रगति-काव्यधारा में लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, भावों की सूक्ष्मता, अभिव्यंजना की प्रभावोत्पादकता आदि के दर्शन होने लगते हैं।

विद्यापति के पद हिन्दी-गीति-काव्य के श्रृंगार हैं, उनमें जन-जीवन का स्वच्छन्द हास-विलास प्रेमी हृदयों का सुमधुर प्रेमालाप,

युवक एवं युवतियों की मदोन्मत्त अठखेलियाँ, रसिकों की आनन्दमयी क्रीडाएँ, स्वच्छन्द जनमानस की भाव लहरियों का उन्मुक्त नर्तन, हृदय-क्यारियों में हँसते हुए भाव सुमनों की दिगदिगंत-व्यापिनी आह्लादकारी सुरभि भाव-विभोर मधुप कण्ठों का मन्दोन्मत्त गुंजन, सिहरनयुक्त विकसित अंगों का स्पन्दन, जन-जन के प्रेम-विह्वल सुमधुर संगीत की उल्लासमयी ध्वनी आदि विद्यमान हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो इन गीतों प्रेमाकुल हृदयों के मधुर स्वर गूँज रहे हों क्योंकि इनमें व्याप्त सरस संगीत, कोमल, निनाद, शास्त्रीय स्वर-विधान, सुललीत पद-विन्यास तथा मद-विह्वल स्पन्दन-काव्य के क्षेत्र में संगीत की निर्मल निर्झरिणी को प्रवाहित करके सहृदयों को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं।

इस प्रकार गीति काव्य सम्बन्धी इन सुदीर्घ परम्परा का अध्ययन करने पर पता चलता है कि विद्यापति संस्कृत की जयदेव वाली गीति-परम्परा में आते हैं तथापि हिन्दी-गीति-काव्य के प्रवर्तक है हिन्दी गीतकारों के प्रेरणा-स्रोत है हिन्दी की रागात्मक गीतियों के प्रथम प्रणेता हैं तथा स्वर-लयपूर्ण रागनियों से युक्त हिन्दी की संगीतमयी कविता-धारा को लोकभाषा के क्षेत्र में से निकाल कर साहित्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने वाले हिन्दी के प्रतिनिधि कवि हैं।